International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 262-263

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 262-263
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 08-05-2017
Accepted: 10-06-2017

डॉ. डॉली जैन
एसोसिएट प्रोफेसर – संस्कृत, 512, रामानुजन आवास, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. डॉली जैन
एसोसिएट प्रोफेसर – संस्कृत, 512, रामानुजन आवास, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान, भारत

श्रीमद्भगवद्गीता एवं सामाजिक समरसता

डॉ. डॉली जैन

प्रस्तावना

गीता अध्यात्म विद्या का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। सात सौ श्लोकों को 18 अध्यायों में गूँथकर यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन का अनुपम प्रतिनिधित्व करता है। महाभारत के युद्ध में मोह के वशीभूत हुए किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने अपने कर्त्तव्य का प्रबोध कराया था। यह उपदेश सर्व जाति, वर्ण, आश्रम और सम्प्रदायों के लिए समान भाव से उपयोगी है। यह जाति और देश की संकीर्ण सीमाओं से परे सभी को जीवन जीने का मार्ग बताती है। गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग, समत्व की भावना मन, वाणी व शरीर से प्राणी मात्र को पीड़ित न करना, अन्तःकरण की पवित्रता, इन्द्रियों का दमन आदि विषय आज भी उतने ही उपादेय हैं, जितने प्राचीन काल में थे। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित समता तत्त्व को प्रस्तुत करना प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है। आज समानता का नारा जोरों से लगाया जाता है। समता के अधिकार को भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची में स्थान दिया गया हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने सहस्रों वर्ष पूर्व समानता का उद्घोष किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित समत्व योग को निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

(1) समत्व योग का स्वरूप – श्रीमद्भगवद्गीता में समत्व भाव को ही योग नाम से कहा गया है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ''हे धनंजय! आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर कर्मों को कर'', यह समत्व भाव ही योग नाम से कहा जाता है। [1] इस समत्व बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ है, इसलिए ''हे धनंजय! समत्व बुद्धि योग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वासना वाले अत्यन्त दीन हैं।'' [2] समत्व बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य–पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है, यह समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। [3]

(2) समत्व योग के हेतु – श्रीकृष्ण समत्व योग के हेतु का उपदेश देते हुए कहते हैं कि समत्व बुद्धि रूप योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए निष्काम भावना से कर्म करना ही हेतु है और योगारुढ़ हो जाने पर सर्वसंकल्पों का अभाव ही कल्याण में हेतु है। [4] वे अर्जुन से कहते हैं कि ''जिस काल में तेरी बुद्धि मोह रूप दलदल से बिल्कुल तर जाएगी तब तू सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त होगा। जब अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जाएगी तब तू समत्व रूप योग को प्राप्त होगा।'' [5]

(3) समत्वयोगी का स्वरूप – भगवान समत्व योगी का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि ज्ञान विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण वाला, विकाररहित और जितेन्द्रिय और मिट्टी, पत्थर व सुवर्ण में समत्व दृष्टि रखने वाला मनुष्य योगी कहा जाता है। [6] जो पुरुष मित्र, बैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुगुणों में तथा धर्मात्माओं में और पापियों में भी समान भाव वाला है, वह अति श्रेष्ठ है। [7] वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समभाव से देखने वाले होते हैं। [8] भगवान कहते हैं कि सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त हुई आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में बर्फ में जल के सदृश व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है। [9]

इस प्रकार जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है क्योंकि वह पुरुष सब में समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता, इससे वह परमगति को प्राप्त होता है। [10]

गीता में इस समत्व योगी को अत्यन्त व्यापक स्वरूप में चित्रित किया गया है। वह सब भूतों में द्वेष भाव से रहित हो, ममता व अहंकार से रहित हो, सुख–दुःखों की प्राप्ति में समभाव वाला हो,

लाभ–हानि में समान भाव वाला हो। [11] वह शत्रु–मित्र, मान–अपमान, सर्दी–गर्मी और सुख–दुःखादिक द्वन्द्वों में सम हो, निन्दा–स्तुति को समान समझने वाला और मननशील हो। [12]

समत्व योग का फल – भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसे योगी को परमश्रेष्ठ कहा है जो योगी अपनी सादृश्यता से सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है। [13] जिसका मन समत्वभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया क्योंकि सच्चिदानन्द घन, परमात्मा, निर्दोष और सम है, इस कारण वे सच्चिदानन्द घन परमात्मा में ही स्थित हैं। [14]

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में समता तत्त्व या समत्व योग का वर्णन किया है। प्रस्तुत शोधपत्र का निष्कर्ष निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है।

(1) गीता में उल्लिखित समत्व योग एक बहुत व्यापक तत्त्व है जो सम्पूर्ण प्राणिमात्र को समान दृष्टि से देखने और सब प्राणियों में ईश्वरत्व के दर्शन करने का उपदेश देता है। इस रूप में यह तत्त्व भाषा, धर्म, जाति व प्रान्तीयता के आधार पर विभक्त समाज को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।

(2) समत्व योग के लिए निष्काम भाव से कर्म करना अपेक्षित है। यह निष्काम कर्म अपने आप में अनेक समस्याओं को समाप्त कर सकता है क्योंकि यदि फल प्राप्ति पर अधिकार न हो तो व्यक्ति भ्रष्टाचार जैसे अनेक कार्य करने की ओर उन्मुख ही नहीं होगा।

(3) गीता में वर्णित समत्व योग व आधुनिक समता तत्त्व में पर्याप्त भिन्नता है। गीता में उल्लिखित समत्व योग आध्यात्मिकता व दार्शनिकता से युक्त है जो मनुष्य मात्र को मनुष्यत्व से ऊपर उठाकर योगत्व के धरातल पर पहुँचाने की सामर्थ्य रखता है।

संदर्थ सूची

1. योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
   सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 2/48
2. दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगा द्धनंजय।
   बद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 2/49
3. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
   तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 2/50
4. आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
   योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 6/3
5. यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
   तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।
   श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
   समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 2/52, 53
6. ज्ञान विज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
   युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 6/8
7. सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
   साधुष्वापि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 6/9
8. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
   शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 5/18
9. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
   सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 6/29
10. समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
    विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।
    समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
    न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 13/27,28
11. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
    निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
    सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
    मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 12/13,14
12. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
    शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।
    तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
    अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 12/18, 19
13. आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
    सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः। – श्रीमद्भगवद्गीता – 6/32
14. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
    निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।। – श्रीमद्भगवद्गीता – 5/19